आरक्षित: 28.08.2022
वितरित: 11.10.2022

<u>उत्तराखंड के उच्च न्यायालय, नैनीताल</u>

अक्टूबर, 2022 के 11वें दिन

माननीय श्री न्यायमूर्ति मनोज कुमार तिवारी

रिट याचिका (एम/एस) संख्या- 1907 /2022

बीच में:

डॉ. दिनेश कुमार... याचिकाकर्ता
(श्री सिद्धार्थ सिंह, अधिवक्ता द्वारा)

और:

श्रीमती किरण सूरी... प्रतिवादी
(श्री आदित्य सिंह, अधिवक्ता द्वारा)

<u>निष्कर्ष</u>

1. याचिकाकर्ता एक दुकान के संबंध में किरायेदार है। उन्होंने विद्वान विहित प्राधिकारी/वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, हरिद्वार द्वारा पारित दिनांक 02.07.2022 के आदेश को पी.ए. प्रकरण क्रमांक 10 सन् 2019 में चुनौती दी है। उक्त आदेश द्वारा याची का प्रार्थना पत्र धारा 34 उ.प्र. शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (संक्षेप में "1972 का अधिनियम संख्या 13") जिसमें मकान मालिक के गवाहों से जिरह की मांग की गई थी, को खारिज कर दिया गया।

2. प्रतिवादी ने 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 21(1)(ए) के तहत एक आवेदन दायर करके एक दुकान को मुक्त करने की मांग की। याचिकाकर्ता ने लिखित बयान दायर किया जिसमें उसने मकान मालिक की आवश्यकता से इनकार किया। मकान मालिक ने रिहाई आवेदन की सामग्री के समर्थन में अपना हलफनामा दायर किया और उन्होंने श्री कृष्ण कुमार सूरी, श्रीमती नेहा, श्री राहुल सूरी, श्री हेम कुमार भसीन और श्री हरपाल सिंह का हलफनामा अपने मामले के समर्थन में भी दायर किया। मकान मालिक द्वारा हलफनामे के माध्यम से साक्ष्य दाखिल करने के बाद, याचिकाकर्ता ने 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 34 के तहत एक आवेदन दायर किया

और इन हलफनामों को दाखिल करने वाले व्यक्तियों से जिरह करने की अनुमति मांगी। उक्त आवेदन पर मकान मालिक ने आपत्ति दर्ज करायी. विद्वान विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता के आवेदन, आदेश दिनांक 02.07.2022 को खारिज कर दिया। उक्त आदेश को इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है कि 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 34 के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करना विद्वान निर्धारित प्राधिकारी के लिए उचित नहीं था, क्योंकि हलफनामे में दिए गए बयान की सत्यता, रिहाई आवेदन का समर्थन दायर किया गया था, केवल इसके माध्यम से ही जिरह किया जा सकता है।.

4. विवादित आदेश रिट याचिका के अनुबंध-1 के रूप में रिकॉर्ड पर है। विद्वान विहित प्राधिकारी ने यह कहते हुए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया कि वादी का साक्ष्य बंद हो चुका है और प्रतिवादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार है, इसलिए, याचिकाकर्ता अपने उत्तर हलफनामे में दिए गए कथनों का खंडन कर सकता है।

5. इस न्यायालय को विद्वान विहित प्राधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई दुर्बलता नहीं मिली। 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 34 निर्धारित प्राधिकारी को कुछ शक्तियां प्रदान करती है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक सिविल न्यायालय को उपलब्ध हैं, जिसमें किसी भी व्यक्ति को बुलाने और उसकी उपस्थिति को लागू करने और शपथ पर उसकी जांच करने और शपथपत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति शामिल है।

6. उ0प्र0 के अन्तर्गत कार्यवाही, शहरी भवन (किराए पर देने, किराए पर देने और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 प्रकृति में सारांशित हैं। उत्तर प्रदेश का नियम 15(3) शहरी भवन (किराए पर देने, किराए पर देने और बेदखली का विनियमन) नियम, 1972 प्रावधान है कि धारा 21(1) के तहत दायर रिहाई के प्रत्येक आवेदन पर, जहां तक संभव हो, उसकी प्रस्तुति की तारीख से दो महीने के भीतर निर्णय लिया जाएगा। विधायिका ने यह प्रावधान नहीं किया कि मामले के समर्थन में मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना है, जैसा कि आदेश XVIII, नियम 4 सी.पी.सी. के तहत माना गया है। लेकिन तथ्यों को हलफनामे पर साबित करना होगा। यदि अनावश्यक जिरह की अनुमति दी जाती है, तो इससे केवल मामलों के निपटाने में देरी होगी, हालांकि, उचित मामले में निर्धारित प्राधिकारी गवाहों की जिरह की अनुमति दे

सकता है। जिरह की आवश्यकता प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। ऐसा नहीं है कि हर मामले में एक बार जिरह के लिए आवेदन दायर करने के बाद, निश्चित रूप से इसकी अनुमति देनी होगी। यह सच है कि हलफनामे में दिए गए कथनों की सत्यता का परीक्षण जिरह द्वारा किया जा सकता है, लेकिन जब तक यह स्थापित नहीं हो जाता कि हलफनामे में दिए गए तथ्यों की सत्यता का परीक्षण जिरह द्वारा किया जाना आवश्यक है, तब तक जिरह की प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती। पार्टी को कारण बताना होगा कि किस विशेष मामले में और किन परिस्थितियों में ऐसी जिरह आवश्यक है। प्रत्येक पी.ए. मामले के संदर्भ में, किसी पक्ष को शपथ पत्र के अभिसाक्षी से जिरह करने की अनुमति देते समय, 1972 के अधिनियम संख्या 13 को लागू करने के उद्देश्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

7. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने WPMS संख्या- 172 का 2007, राज कुमार बनाम ओम प्रकाश शर्मा और अन्य के अनुसार निम्नानुसार आयोजित किया गया है:-

> **6.** शुरुआत में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि अधिनियम की धारा 34 को इसके तहत बनाए गए नियमों के नियम 22 के साथ पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी को धारा 34 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा। उक्त अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के नियम 22 के अनुसार भी कार्य करें। अधिनियम की धारा 21 के तहत आवेदनों का निर्णय पार्टियों द्वारा हलफनामे दाखिल करके दिए गए साक्ष्य के आधार पर किया जाना है। इन प्रावधानों के तहत मौखिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया जाता है। इसमें कोई शक नहीं, सत्ता दे दी गई है अधिकारियों को किसी भी व्यक्ति को बुलाने और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने और शपथ पर उसकी जांच करने का अधिकार है। विधायी का इरादा यह था कि उक्त अधिनियम के तहत विभिन्न प्राधिकरणों के समक्ष लंबित मामलों का निर्णय प्रतिद्वंद्वी दलों द्वारा साक्ष्य के रूप में दायर किए गए हलफनामों के आधार पर ही किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 34(1)(बी) संबंधित अधिकारियों को शपथपत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करती है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIX, नियम 1 के तहत लागू सिद्धांत को लागू किया जा सकता है, जो अधिकार देता है। अदालत एक शपथपत्र के साथ एक गवाह को जिरह के लिए तलब करेगी। अधिकारियों के पास किसी भी पक्ष को शपथ पत्र के अभिसाक्षी से जिरह करने की अनुमति देने की शक्ति है, लेकिन इस शक्ति का प्रयोग यूपी द्वारा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 19, नियम 1 के तहत निर्धारित सिद्धांत पर होना चाहिए। 1976 का अधिनियम संख्या 57

। इस प्रकार, न्यायालय के पास जिरह की अनुमति देने का विवेकाधिकार है जब विवाद में मामले के उचित निर्णय के लिए ऐसी जिरह आवश्यक हो। यदि कोई पक्ष जिरह करना चाहता है तो उसे आवेदन में आवश्यक तथ्य देने होंगे कि जिरह क्यों जरूरी है। स्वाभाविक रूप से जिरह का आदेश नहीं दिया जा सकता। जिरह की अनुमति देने या इनकार करने के लिए कारण बताना निर्धारित प्राधिकारी का काम है। इस प्रकार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अभिसाक्षी की जिरह की अनुमति देने के विवेक का प्रयोग तब किया जा सकता है जब पार्टी के लिए हलफनामे पर साक्ष्य दाखिल करके तथ्य का खंडन करना संभव नहीं है। खुशीराम डेडवाल बनाम के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले से मेरी राय मजबूत हुई है। अतिरिक्त न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय/विहित प्राधिकारी, मेरठ एवं अन्य। 1997 (2) ए.आर.सी. 674 जिसमें यह देखा गया है कि "यदि कोई पक्ष जिरह करना चाहता है, तो उसे आवेदन में आवश्यक तथ्य देने होंगे कि जिरह क्यों आवश्यक है। विहित प्राधिकारी अनुमति देने या इनकार करने का कारण बताएगा।" जिरह। विहित प्राधिकारी के आदेश में बताए गए कारणों से पता चलेगा कि उसने निष्पक्षता से काम किया है या नहीं। मामले के हर पहलू पर विचार करते हुए 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 के प्रावधानों के तहत प्राधिकारी किसी की जिरह की अनुमति दे सकता है। मामले में आवश्यक होने पर ही शपथपत्र पर गवाही दें।" इसमें आगे देखा गया कि "विधायिका ने मामले के समर्थन में पेश किए जाने वाले मौखिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराए, जैसा कि ऑर्डर XVIII, नियम 4 नागरिक प्रक्रिया संहिता के तहत विचार किया गया था, लेकिन तथ्यों को हलफनामे पर साबित किया जाना है। यदि अनावश्यक क्रॉस- जांच की अनुमति दी गई है, इससे केवल मामलों के शीघ्र निपटान में बाधा आएगी।" श्रीमती के मामले में. गुलाइचा देवी वि. विहित प्राधिकारी (मुंसिफ) बस्ती एवं अनु. 1989 (1) एआरसी 407 में यह माना गया है कि रिहाई आवेदन के मामले में साक्ष्य हलफनामे के रूप में दायर किया जाना चाहिए और आम तौर पर निर्धारित प्राधिकारी को अभिसाक्षी की जिरह की अनुमति नहीं देनी चाहिए। जिरह की अनुमति देने की ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए और ऐसे मामले में, निर्धारित प्राधिकारी को कारण बताना आवश्यक है। श्रीमती के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय। फहमीदा शोएब (मृत) बनाम। कन्हैया लाल (मृत) और अन्य। 2005 (61) ए.एल.आर. 310 में माना गया है कि यह एक पूर्व शर्त है कि क्रॉस के लिए आवेदन की अनुमति देते समय-जांच में, विहित प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह आदेश में उन असाधारण परिस्थितियों को इंगित करे जो ऐसी अनुमति के लिए आवश्यक हैं।

7 मौजूदा मामले में, यूपी के तहत बनाए गए नियमों के नियम 22

के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 34 के तहत आवेदन की प्रति। 1972 के अधिनियम संख्या 13 और ऑर्डर 19, नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता को रिट याचिका में अनुबंध संख्या 3 के रूप में संलग्न किया गया है। इस आवेदन में याचिकाकर्ता, किरायेदार का मुख्य तर्क यह है कि गवाहों ने महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं किया है, खासकर इस तथ्य का कि आवेदक-मकान मालिकों ने किसी अन्य मामले में दुकान छोड़ दी है। यह भी दलील दी गई है कि मकान मालिक के गवाह ओम प्रकाश ने शपथ पत्र में संपत्ति और आय का ब्योरा नहीं दिया है। उक्त गवाहों द्वारा शपथ पत्र में गवाह रामेश्वर एवं बालकिशन की मकान मालिकों से जान-पहचान का खुलासा नहीं किया गया है। विद्वान विहित प्राधिकारी ने अपने विवादित आदेश के मामले में सभी पहलुओं और वास्तविक तथ्यात्मक स्थिति पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता-विरोधी पक्ष ने ठोस और संतोषजनक कारण नहीं बताए हैं, जिससे वह गवाहों से जिरह करने का हकदार बन सके। विहित प्राधिकारी ने यह भी देखा है कि याचिकाकर्ता-विरोधी पक्ष के लिए यह खुला है कि वह जमींदारों के गवाहों द्वारा दिए गए शपथ पर दिए गए बयानों पर खंडन में हलफनामा दायर करके विवाद कर सकता है। निर्धारित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता-किरायेदार को दिए गए शपथपत्रों के गवाहों से जिरह की अनुमति न देकर कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं की है। विहित प्राधिकारी ने विवादित आदेश में गवाहों से जिरह करने की अनुमति देने से इनकार करने के कारणों को इतने शब्दों में दर्ज किया है। उपरोक्त के अलावा, यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि यू.पी. का प्राथमिक उद्देश्य 1972 का अधिनियम क्रमांक 13 मुकदमों का त्वरित निस्तारण है। मुझे अभिसाक्षी से जिरह करने की अनुमति के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र संख्या 59-सी को खारिज करने में विहित प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 01-03-2007 के आदेश में कोई विकृति या कानून की कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं मिली।"

8. यह न्यायालय उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सम्मानजनक सहमत है। इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, यह न्यायालय विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है।

9. तदनुसार, रिट याचिका विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

(मनोज कुमार तिवारी, जे.)

असवाल